Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 SHISRRJ | Volume 5 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

वेदार्थ ज्ञान में स्वरों का महत्व

नीरज आर्य

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

Article Info
Volume 5, Issue 5
Page Number : 50-54

Publication Issue :
September-October-2022

Article History
Accepted : 01 Sep 2022
Published : 10 Sep 2022

शोध सारांश - मीमांसा में शबर स्वामी लिखते हैं- अथ त्रैस्वर्यादीनां कथं समाम्नानमिति उच्यते, अर्थावबोधनार्थं भविष्यति।[1] आर्यसमाज के संस्थापक वेदभाष्यकार स्वामी दयानन्द जी अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखते हैं - वेदार्थोपयोगिताया: संक्षेपत: स्वराणां व्यवस्था लिख्यते।[2] इस प्रकार सभी प्राचीन अर्वाचीन आचार्यो ने सर्वत्र वैदिक लौकिक समस्त वाङ्मय में स्वरों का उपयोग नितान्त आवश्यक माना है।अन्य उदाहरण भी ऐसे देखे जा सकते हैं जिसमें स्वरों के अभाव में सत्यार्थ निर्णय करना कठिन हो जाता है- जैसे- भ्रातृव्यस्य वधाय'', "न तस्य प्रतिमा अस्ति'' इत्यादि। अत: कहा जा सकता है कि विना स्वरों की सहयता से वेदार्थज्ञान नहीं हो सकता सत्यार्थज्ञान के लिये स्वरों का विशेष महत्व है। वेद में तीन स्वरों की सहायता से मन्त्र पढ़े जाते हैं स्वरज्ञान के बिना बहुत्र सन्देह उत्पन्न होता है इसलिए प्राचीन आचार्यों का मत है कि मन्त्रजिज्ञासु को स्वरों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। कहा भी है - स्वरो वर्णोऽक्षरं मात्रा तत्प्रयोगार्थक्यमेव च। मन्त्रं जिज्ञासमानेन वेदितव्यं पदे पदे।।[3]

मुख्य शब्द – वेदार्थ, ज्ञान, स्वर, मीमांसा, शबर, स्वामी, सृष्टि, सत्यार्थज्ञान।

वेद संपूर्ण मानव मात्र के लिएज्ञाननिधि रुप में सृष्टि के आदिकाल से ही विद्यमान है। सकलसकल विद्यायें वेदों में निहित है मनु महाराज ने भी मनुस्मृति में **"सर्वज्ञान मयो हि स:"**[4] एवं**"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्''**[5] कहकर वेदों की सर्व मान्यता को स्वीकार किया है। जिज्ञासु जन भी वेदों के द्वारा ही अपनी बात को सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। संपूर्ण साहित्य में वेदों की प्रधानता को ही स्वीकार किया गया है। महाभाष्य में भी कहा है–

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्म: षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति[6]

मनु महाराज ने भी -

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वय:।।[7]

इन वचनों से वेदों की अनिवार्यता प्रतिपादित होती है। तथा वेदों के अर्थ जान को जानकर ही महान आचार्य ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं। अर्थज्ञान की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए निरुक्तकार कहते हैं।

स्थाणुरयं भारहार: किलाभूदधीत्य वेदं यो न विजानात्यर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

अर्थात् वेद का अध्ययन जो अर्थज्ञान बिना करता है वह भार को हरने वाले स्थाणु के समान ही है। वेद का अर्थज्ञान पूर्वक जो अध्ययन करता है वह संपूर्ण तत्वों को जान लेता है। जिस प्रकार मानव अपने मुख आदि अंगों द्वारा पहचाना जाता है वैसे ही वेदों का अच्छी प्रकार ज्ञान भी उस अंगों द्वारा ही किया जाता है। वेदांगों का प्रणयन वेदार्थ जाने के लिए ही हुआ है ऐसा प्राय: विद्वान् मानते हैं। निरुक्तकार यास्क ने भी अपने शास्त्र में –

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवु:। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन तान् मन्त्रान् सम्प्रादु:। उपदेशेन ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेनं ग्रन्थं समाम्नासिषु: वेदं चवेदाङ्गानि च।[8]

इस शास्त्रवचन से भी यह प्रमाणित होता है कि वेदांगों का निर्माण श्रुति के अर्थावगमन के लिये हुआ। मुण्डकोपकनिषद् में भी –

द्वे विद्येवेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मवादिनो वदन्ति ..... परा चैव अपरा च। परा विद्या चवेदवेदांङ्गम्। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्ववेद: शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।[9]

वेदांगों का वेदपुरुष के साथ पाणिनीय शिक्षा में भी वर्णन मिलता है–

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षु: निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
छन्द: पादौ तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधित्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।[10]

उपर्युक्त पद्य से ज्ञात होता है कि वेदांग वेद के अत्यंत उपकारक भूत हैं। उन वेदांग में भी व्याकरण सर्वाधिक प्रमुख है और व्याकरण शास्त्र में भी वेदार्थ जान के लिए स्वरों का विज्ञान अत्यंत आवश्यक है। व्याकरण शास्त्र में स्वर अचों की संज्ञा विहित है।छन्द:शास्त्र में विहित षडजादी सप्त स्वरों का विधान है। व्याकरण शास्त्र में तीन स्वर जो कि उदात्त, अनुदात, स्वरित के रूप में जाने जाते हैं।

काशिका में भी – **ताल्वादिषु हि भागवत्सु स्थानेषु वर्णा निष्पद्यन्ते, तत्र य: समाने स्थाने भागे निष्पन्नोऽच् स उदात्तसंज्ञो भवति यस्मिच्चार्यमाणे गात्राणामाचाम निग्रहो भवति, स्क्षता अस्निग्धता स्वरस्य, संवृतता कण्ठविवरस्य।" नीचैरुपलभ्यमानी योऽच् सोऽनुदानसंज्ञो भवति समाने स्थाने नीचभागे निष्पन्नोऽच् अनुदात्त: यस्मिन्र्यमाणे गात्राणामन्वसर्ग:- मार्दवं भवति, स्वरस्य मृदुता स्निग्धता, कण्ठविकारस्योरुता- महत्ता।" उदानानुदानस्वरसमाहारोऽस्वरितो भवति सामर्थ्याच्या लोकवेदयो: प्रसिद्ध गुणावेव वर्णधर्माबुदानानुदासी गृह्येते नाचौ तौ समाहियेते परिमप्रथितस्य "स्वरित" इत्येषा संज्ञा विधीयते।"**[11]

निरुक्तकार यास्क भी – तीव्रार्थतरमुदात्तम् ..... अनुदात्तमन्वादेशे।उदात्तं प्रथमो देशे .....। अल्पीयोऽर्थतरमनुदात्तम् इत्यादि स्थलों में उदात्तादि स्वरों को परिभाषित करते है।

वैदिक पदार्थों के अवबोधन के लिये स्वरों का महत्व दर्शाते हुए भर्तृहरि वाक्यपदीय में लिखते हैं–

संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता। अर्थ: प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यास्य सन्निधि:। सामर्थ्यमौचिति देश: कालो व्यक्ति: स्वरादय:। शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतव:।।[12]

साहित्यदर्पण के कर्ता विश्वनाथ भी काव्यशास्त्र में वेदार्थज्ञान में स्वरों के महत्व को बताते हुए लिखते हैं –

"वेदे स्वरास्तु एव विशेषप्रतीतिकृत्"।।[13]

ऋग्भाष्यकार स्वरमर्मज्ञ वेङ्कट माधव भी स्वरानुक्रमणिका में लिखते हैं –

अन्धकारे दीपकाभिर्गच्छन्नस्खलति क्वचित्।

एवं स्वरैः प्रणीतानां भवन्त्यर्थाः स्फुटा इति।।[14]

स्वरों का निर्देश करते हुए वेङ्कट माधव ही स्वविरचित द्वादशविधानुक्रमणी के उपोद्घात में लिखते है – **नामाख्यातविभागश्च स्वरादेवागम्यते।**[15]

उदाहरणस्वरूप 'स कर्ता' इन वाक्यों में प्रथम जो कर्ता पद है वह तृन्नन्तम् आद्युदात्त होने से नाम है क्योंकि **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'**[16] इस सूत्र से प्रत्यय को नित्य आद्युदात्त होता है, जो दूसरा कर्ता पद है वह तिङन्त लुट् लकार में होता है। यहाँ **'न लुट्'**[17] इस सूत्र से लुङन्त और तिङन्त उदात्त नहीं होता इसका प्रतिषेध करने पर **''तस्यानुदात्तेन्दि०'**[18] इस सूत्र से ल सार्वधातुक प्रत्यय को अनुदात्त कहा है। फिर प्रक्रिया के अन्त में टिभाग के लोप करने पर उदात्तस्वर के हट जाने पर कर्ता यहाँ पर 'त' यह पद उदात्त होता है। उसके बाद **'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'**[19]इस सूत्र से उत्तरपद को छोड़कर अनुदात्त के विधान होने पर 'कर्ता' यह लुङन्त पद सिद्ध होता है।

इसी प्रकार तृच् प्रत्ययान्त कर्ता शब्द के चित्वात् **(चितः)**[20] इस सूत्र से अन्तोदात्त होता है। एवं कर्ता (तृन्नन्तम्) कर्ता (लुङन्तम्) कर्ता (तृजन्तम्) तीनों की ही पररूप साम्यता है। इन पदों में स्वराभाव में हम यह नहीं जान सकते हैं कि किस पद का कौन-सा अर्थ होगा इसलिए स्वरविज्ञान से ही शब्दों के अर्थ स्पष्ट होते हैं, तथा नामाख्यात विभाग भी शीघ्र समझ सकते हैं।

महाभाष्य में लिखा है कि यज्ञकर्म में 'स्थूलपृषतीमनड्वाहीमालभेत' यहाँ स्थूलपृषती इस शब्द में दो समास हैं। समासभेद से ही यहाँ अर्थभेद हो जाता है।जैसे – स्थूला चासौ पृषती च स्थूलपृषती यहाँ कर्मधारय। स्थूलानि पृषन्ति यस्याः सेयं स्थूलपृषती यहाँ बहुव्रीहि। इस उदाहरण में स्वरों के बिना समासभेद का ज्ञान नहीं हो सकता कर्मधारय समास में **'बहुव्रीहि प्रकृत्या पूर्वपदम्'**इस सूत्र से स्थूलपृषती का लकार उदात्त है। इस उदाहरण में स्वरभेद से अर्थभेद हो जाता है। इन स्थलों पर संदेह उत्पन्न होता है, तब स्वर विज्ञान से संदेह के निवृत्ति होती है। व्याकरण महाभाष्य में व्याकरण प्रयोजनों को दर्शाते हुए पतंजलि लिखते हैं – **"रक्षोहागमलघ्वसंदेहाः प्रयोजनम्"।**[21] इसमें पतंजलि अंतिम प्रयोजन की व्याख्या करते हुए लिखते हैं – आसन्देह की निवृत्ति के लिए व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए।

याज्ञिकाः पठन्ति – 'स्थूलपृषतीमाग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेतेति'। स्थूला चासौ पृषती च स्थूलपृषती च स्थूलपृषती, स्थूलानि पृषन्ति यस्याः सा स्थूलपृषती तां नावैयाकरणः स्वरतोऽध्यवस्यतीति। यहाँ पर ''स्थूला चासौ पृषती च'' ऐसा विग्रह करने पर **'समासस्य'**[22] इस सूत्र से समासान्तोदात्तत्व का विधान तथा शेष का अनुदात्त होने पर स्थूलपृषती शब्द सिद्ध होता है।यहीं पर उत्तर पद प्रधान होने पर समानाधिकरण तत्पुरुष में पृषती इस शब्द का प्राधान्य होता है। यहां पर "स्थूलानि पृषन्ति यस्याः सा" ऐसा विग्रह करने पर "बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्'' इस सूत्र के द्वारा पूर्वपद प्रकृति स्वरत्व सिद्ध होता है। यहाँ स्थूलपदं 'स्थूल परिबृंहणे' इस धातु से **''नान्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः''**[23] इस सूत्र सेअच् प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है।

प्रत्यय के चित् होने से **''अन्तोदात्तादुत्तरपदादन्यतरस्यामनित्य समासे''**[24] इस सूत्र से उदात्त होने पर और **'तद्धितस्य'**[25] इस सूत्र से शेष को अनुदात्त होने पर (स्थूलपृषती) इस दशा में पुनः **'उदात्तानुदात्तस्य स्वरितः'**[26] इस सूत्र से स्वरित होने पर (स्थूलपृषती) तदनन्तर **'स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्'**[27] इस सूत्र से एकशेष होने पर

(स्थूलपृषती) पद सिद्ध होता है। यहाँ बहव्रीहि समास के कारण अन्यपदका प्राधान्य लक्षित होता है। इस शब्द में भी स्वर विज्ञान के बिना पदार्थप्रतिपत्ति सम्यक् प्रकार से नहीं हो सकती। महाभाष्य के प्रथम आह्निक में ही व्याकरण प्रयोजनों का वर्णन करते हुए पत´्जलि कहते हैं –

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।

स वाग्वज्रो यज्ञमानं हिनस्ति यथेन्द्र शत्रु स्वरतोऽपराधात्।।[28]

यहाँ पर भी इन्द्रशत्रु इस पद का तत्पुरुष समास के कारण तथा बहुव्रीहि समास के कारण दो अर्थ होते हैं। इन्द्र का शत्रु (तत्पुरुष), इन्द्र है शत्रु जिसका (बहुव्रीहि)। यहाँ पर भी तत्पुरुष में समास स्वर के कारण इन्द्रशत्रु ऐसा स्वर निष्पन्न होता है। बहुव्रीहि में पूर्वपद प्रकृतिस्वर से इन्द्रशत्रु ऐसा निष्पन्न होता है क्योंकि इन्द्रपद को उणादि में **''ऋजेन्द्र ग्रवज्रविप्र०'' (उणादि० 2/29)**इससे रन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है प्रत्यय के नित् होने से आद्युदात्त सिद्ध होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि इन्द्रशत्रु का सही अर्थ कैसे जाना जा सकता है अर्थात् बिना स्वरों के तत्पुरुष और बहुव्रीहि का भेद भी नहीं हो पायेगा।

सन्दर्भ–

1.शबरभाष्य. 9/2/31
2.ऋग्वेदादि. पृष्ठ–374
3.वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा – 8
4.मनु. 2/71
5.मनु. 2/61
6.महाभाष्य पस्पशा.
7.मनु. 2/168
8.निरुक्त 1/1
9.मुण्डकोपनिषद् 1/1/4
10.पाणिनीय शिक्षा 41, 42
11.काशिका 1/2/29, 30, 31
12.वाक्यपदीयम्2/3/7
13.साहित्यदर्पण, परिच्छेद–3
14.स्वरानुक्रमणी 1/8
15.ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका परिशिष्ट
16.अष्टाध्यायी 6/1/197
17.अष्टाध्यायी 8/1/29
18.अष्टाध्यायी 6/1/180
19.अष्टाध्यायी 6/1/158
20.अष्टाध्यायी 6/1/163
21.महाभाष्य पस्पशा.

22.अष्टाध्यायी 6/1/217
23.अष्टाध्यायी 3/1/134
24.अष्टाध्यायी 6/1/163
25.अष्टाध्यायी 6/1/158
26.अष्टाध्यायी 8/4/65
27.अष्टाध्यायी 1/2/39
28.महाभाष्य पस्पशा.